कृषि मूल्य और विपणन

सुरेन्द्र सूद

किसानों की प्रमुख समस्या है कि उन्हें पर्याप्त बाजार सूचना, अनावश्यक नियंत्रण वास्तविक आधारभूत सुविधाएं और घरेलू एवं विश्व दोनों में अस्थिर मूल्य होने के कारण उन्हें लाभकारी मूल्य नहीं मिलता है। ऐसा योजना आयोग की बारहवीं योजना के दस्तावेजों में कहा गया है।

किंतु, दुखद बात यह है कि नीति निर्माताओं द्वारा इस पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। राष्ट्रीय नीति दस्तावेज में मूल्य और विपणन सुधारों की रूपरेखा तैयार करने के बाद सरकार ने कृषि व्यापार पर कई प्रतिबंध लगा दिए, जैसे माल रखने की सीमा और निर्यात पर प्रतिबंध जो वर्ष 2008–09 में अधिकतम कृषि जिंसों पर लगाया गया ताकि घरेलू मूल्य कम रहे। इस प्रकार की व्यर्थ विपणन और मूल्य नीतियां किसानों के विरूद्ध जाती हैं और उन्हें अभी तक अपने उत्पादन के लिए विश्व बाजारों के अच्छे मूल्य नहीं मिल पाते हैं। इस कारण किसानों को कम लाभ होता है और कुछ जिंसों पर तो लाभ होता ही नहीं जिस कारण किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है। अत भारतीय कृषि की आर्थिक व्यवहारिकता दांव पर लगी है।

वास्तव में कृषि मूल्य और विपणन नीतियां लंबे समय से उपभोक्ताओं के हित में बनाई जाती हैं जिसकी कीमत किसानों को चुकानी पड़ती है। इस व्यर्थ के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निर्यात और आयात शुल्क लगाने जैसे काम किए जाते हैं और कठोर अनिवार्य जिंस अधिनियम का उपयोग किया जाता है जिसमें सरकार को अधिकार है कि वह कृषि जिंसों पर विभिन्न प्रतिबंध और नियंत्रण लगा सकती है तथा व्यापारियों के परिसरों पर छापे भी मार सकती है। कई बार कृषि जिंसों के वायदा कारोबार पर भी प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं जिस कारण किसानों को बाजार मूल्य नहीं मिल पाता है।

मूल्यों को नियंत्रित रखने के लिए चावल और गेहूं जैसे प्रमुख अनाजों पर प्रतिबंध लगाया जाता है जिसे एकमात्र खरीददार और माल जमा करने वाला सरकार ही होती है, इसके अतिरिक्त अन्य खाद्य एवं गैर खाद्य फसलों पर भी प्रतिबंध लगाया जाता है जिनमें दालें, तिलहन, सब्जियां, फल और पशुधन की उत्पादक वस्तुएं हैं।

कृषि जिंसों के आयात और निर्यात की नीतियां भी सामान्यतः उत्पादकों के हितों के विपरीत होती हैं और उपभोक्ताओं को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं। इस तथ्य को सरकार के अपने मूल्य नीति के विभाग यथा कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) ने भी स्वीकार किया है।

इस प्रकार की व्यर्थ नीतियों से किसानों को लाभ नहीं मिलता है और वे गैर–आहार की बढ़ती हुई मांग को पूरा नहीं करते हैं जो दिन प्रतिदिन जनसंख्या बढ़ने और उपभोक्ताओं की आय बढ़ने के कारण बढ़ती जा रही है। अनाज का उत्पादन बढ़ाने पर ही ध्यान दिया जा रहा है जबकि इन फसलों का पहले ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा है। इस बिगड़ी हुई फसल पद्धति ने विभिन्न कृषि जिंसों की आपूर्ति को कुचल दिया है विशेषकर महंगी और पोषक जिंसों को जैसे दालें, सब्जियां, फल, दूध और दूध उत्पाद, अंडे, मीट और मछली।

इसके अतिरिक्त, किसानों को मिलने वाले मूल्य और उपभोक्ताओं द्वारा दिए जाने वाले मूल्यों के बीच काफी अंतर है, जिस कारण स्थिति गंभीर हो गई है और बिचौलियों को लाभ मिल रहा है किंतु दूसरी तरफ फसल उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को ही हानि पहुंचती है। वास्तविक परिणाम यह है कि उपभोक्ता को दैनिक वस्तुओं की खरीद हेतु अधिक मूल्य देना पड़ता है और उत्पादकों को इस अधिक मूल्य में से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अधिकांशतः गरीब आदमी को नुकसान सहना पड़ता है और मूल्य स्फीति के कारण थोक मूल्य प्रभावित होते हैं। नवीनतम अनुमान में उल्लेख किया गया है कि सब्जियों और फलों के विनाशशील होने के कारण किसान सामान्य रूप से उपभोक्ताओं द्वारा दिए जाने वाले मूल्य का आधे से एक तिहाई भाग का ही लाभ उठा सकते हैं। अन्य फसलों में जिनमें विनाशशील अनाज शामिल नहीं है, के मामले में उत्पादकों को महंगाई के मौसम में 50 से 60 प्रतिशत भाव कम मिलते हैं। यह कम होकर घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे चले जाते हैं या उन मंडियों में जाते हैं जिनमें खरीद कार्य नहीं किए जा सकते। उपभोक्ता के द्वारा दिए गए पैसे में से इन उत्पादकों को लाभ बहुत कम मिलता है जिसके लिए निर्यात बाजार नहीं होता। यह भारतीय बागवानी उत्पाद के निर्यात प्रतिस्पर्धा के हाल ही में विश्व बैंक द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है। इसमें पाया गया है कि एक विशेष प्रकार की बागवानी वस्तुओं के लिए 12 से 15 प्रतिशत किसानों का ही भाग होता है, जो आयात देशों से थोक स्टोरों पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध होता है।

दुर्भागयवश, भारत में कृषि मूल्य कुछ जन्मजात वैचारिक सीमाओं से प्रभावित है। इन मूल्यों को आरम्भ में मुद्रास्फीती के रूप में देखा गया और इनके मापने की विधि थोक मूल्य सूचकांक, परचून या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, या खाद्य मुद्रा स्फीती सूचकांक के पैमाने से की जाती है। इसके लिए कोई ऐसा उपकरण नहीं है जिससे वास्तव में यह जानें कि किसानों को नियमित, उचित मंडियों या गैर–नियमित मंडियों में कितना मूल्य मिलता है। थोक मूल्य सूचकांक में रिकॉर्ड के अनुसार थोक मूल्य आमतौर पर उन मूल्यों को माना जाता है जो उत्पादकों को मिलता है। किंतु वास्तव में सदा ऐसा नहीं होता है। कई नियमित मंडियों में कृषि उपजों को कमीशन एजेंटों या अन्य बिचौलियों के माध्यम से बेचा जाता है जिस कारण कितने किसानों को यह पता नहीं चल पाता है कि उनकी फसल के लिए कितना दाम मिलता है। इसके अतिरिक्त, कुछ छोटे किसान अपनी फसलों का अधिक माल पहले ही इनफोरमल मंडियों में कम दाम पर बेच देते हैं क्योंकि इन मंडियों में खरीददार विद्यमान रहते हैं। इन मंडियों में मुसिबत में पडे किसान आमतौर पर अपनी फसलों की बिक्री करते नजर आते हैं। वास्तव में इस सच्चाई का उल्लेख एनसीएफ की रिपोर्ट में भी किया गया है। इसमें कहा गया है कि फसल की कटाई के बाद छोटे और मंझोले किसान अपनी तत्कालीक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो उधार लेते हैं उन्हें चुकाने के लिए करते हैं। आमतौर पर एक किसान को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसकी फसल का मंडियों के भाव से 10 से 15 प्रतिशत कम मूल्य तुरंत मिल जाता है। विश्वस्त सूत्रों के अनुसार लगभग सभी छोटे और मंझोले किसान अपनी अतिरिक्त फसलों का लगभग 50 प्रतिशत भाग इसी प्रकार बेच देते हैं। महत्वपूर्ण बाजार की सूचना का अभाव अधिकतम किसानों के लिए विकट अभिशाप है चाहे वे बडे किसान हों या छोटे। वे नहीं जानते कि अपनी फसल का अधिकतम मूल्य पाने के लिए इसे कहां और कब बेचें।

वास्तव में 1960 दशक के मध्य से सरकारी कृषि नीतियों का मुख्य आधार न्यूनतम समर्थन मूल्य नियत करना है। किंतु सब कुछ सुचारू नहीं है क्योंकि कृषि मूल्य लागत आयोग का क्षेत्र काफी विस्तृत है। न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करते समय कृषि मूल्य लागत आयोग को न केवल प्रत्यक्ष उत्पादन की लागत को ध्यान में रखना होता है, किसानों के लाभ और उन पहलुओं का भी ध्यान में रखना होता है जिसका लागत से सीधा संबंध नहीं है जैसे कि उपभोक्ता के लिए सुझान गए मूल्य और अर्थव्यवस्था पर पडने वाला प्रभाव। खेती या उत्पादन की लागत की

गणना में व्यय की गई सभी लागतों को गिना जाता है जैसे किराए पर लिए गए मजदूर, बैल और मशीन चलाने के मजदूर (किराए के और अपने दोनों) पट्टे की भूमि के लिए दिया गया किराया, नकद या अन्य प्रकार से तथा उपकरण सामग्री के उपयोग का खर्चा जैसे बीज, उर्वरक, खाद और सिंचाई (इसमें पम्प सैट चलाने के लिए डीजल या बिजली की रकम शामिल है)। इसके अतिरिक्त, इसमें परिवार के मजदूरों का वेतन और अपनी भूमि का किराया, कृषि मशीनरी और भवनों का मूल्यहास, परिवहन और बीमा की लागत शामिल है। निःसंदेह यह सूची बहुत बडी है जो न केवल वास्तविक नकद व्यय की गणना करती है बल्कि अपनी परिसंपत्तियों और पारिवारिक मजदूरों के वेतन की भी गणना की जाती है।

किंतु इन सबके होते हुए भी कृषि लागत और मूल्य आयोग से अपेक्षा की जाती है कि आमतौर पर घरेलू और अंतराष्ट्रीय मूल्य स्थिति के कारण संदिग्ध मूल्यों के संभावित प्रभाव और सरकार पर आर्थिक सहायता देने के कारण पडने वाले बोझ का भी गिना जाता है। अन्य शब्दों में, कृषि लागत एवं मूल्य आायेग ने न केवल किसानों के लाभ के लिए मूल्य सुझाए बल्कि सस्ती दरों पर कृषि वस्तुओं की उपभोक्ताओं को आपूर्ति करके उनके हितों की भी रक्षा की और सरकार की भी सहायता की जैसे राजस्व बोझ पर नियंत्रण करके। इस प्रकार के कठिन कार्यों के कारण कृषि लागत एवं मूल्य आयोग का कार्य कठिन हो जाता है और उसे उपभोक्ताओं के हित में मूल्यों में कमी करनी पडती है जो किसानों के विरूद्ध जाती है।

किंतु समस्या यह भी है कि कृषि लागत मूल्य आयोग सिंचाई की लागतों के आंकडे सीधे इकट्ठे नहीं करता है। इस आयोग को विभिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न न्यूनतम समर्थन मूल्य सुझाने की स्वतंत्रता भी नहीं है क्योंकि विभिन्न राज्यों में उत्पादन लागत और मंडी शुल्क में बहुत भिन्नता होती है। कृषि मंत्रालय विभिन्न राज्यों से लागत के आंकडे इकट्ठे करता है और इसे कृषि लागत मूल्य आयोग को दे देता है जो कम से कम दो से तीन वर्ष पुराने होते हैं। इस अवधि में निश्चित रूप से वास्तविक लागत में पर्याप्त परिवर्तन हो सकता है। कृषि लागत मूल्य आयोग को यह श्रेय जाता है कि इसने अनुमानित लागतों के पहलुओं में संशोधन करना आरंभ कर दिया है। वास्तव में कृषि लागत मूल्य आयोग ने सरकार से पहले ही सिफारिश की थी कि लागत के आंकडे जल्दी उपलब्ध कराए जाएं अर्थात इन्हें इकट्ठा करने के 5 महीने के अंदर।

निःसंदेह सरकार ने हाल ही में विनाशशील बागवानी जिंसों को मूल्य समर्थन देने के लिए विपणन हस्तक्षेप योजना आरंभ की है किंतु इससे भी जिंसों के उत्पादकों को शायद ही कुछ लाभ मिले क्योंकि इसके लिए सुझाए गए उपाय इतने कठिन हैं कि उन्हें एक निर्धारित समय में पूरा करना सरल नहीं है।

प्रायः नीति निर्माता इस बात को समझ नहीं पाते कि कृषि क्षेत्र अपनी क्षमता के अनुसार तब तक उन्नति नहीं कर सकता, चाहे आधुनिक तकनीक का उपयोग भी कर लिया जाए, जब तक किसानों को उनके निवेश और मेहनत के लिए अच्छा लाभ सुनिश्चित नहीं होता। 1960 के दशक के अंत में और 1970 के दशक में हरित क्रांति की प्राप्ति का कारण यह था कि उन्हें सार्वजनिक खरीद के द्वारा लाभकारी मूल्य मिलना सुनिश्चित था और इस प्रकार किसानों के लिए गेहूँ और चावल अच्छा लाभ देने वाली जिंसें थी। यह भी नोट करने योग्य है कि इस हरित क्रांति का विस्तार अन्य फसलों तक नहीं हो पाया जैसे तिलहन, दालें और और मोटा अनाज क्योंकि इनके लिए कोई निश्चित खरीद, बिक्री और लाभकारी मूल्य सुनिश्चित नहीं था। यद्यपि सरकार ने अब तिलहनों, दालों और मोटे अनाज के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य नियत कर दिए हैं, किंतु किसानों के पास उपयुक्त विपणन

समर्थन न होने के कारण यह मूल्य न के बराबर है। इसके परिणामस्वरूप इन फसलों का उत्पादन कम रहता है हालांकि नई विकसित किस्मों और बेहतर उत्पादन तकनीक जैसी सुविधाएं प्राप्त हैं।

दुर्भाग्यवश, न तो कृषि विपणन ढांचा न ही कृषि विपणन और व्यापार पर लागू होने वाली विधिक पद्धतियां परिवर्तित परिस्थितियों के साथ कदम मिलाकर चल पा रही हैं। भारत जैसे बडे देश में केवल 7190 नियमित मंडियां और लगभग 22500 प्राथमिक ग्रामीण मंडियां हैं।

औसत निकाला जाए तो 115 वर्ग किलोमीटर के बडे क्षेत्र में केवल एक उचित मार्केट है। नियमित कृषि मंडियों में, एक मंडी का क्षेत्र 457 वर्ग किलोमीटर का है। जहां तक कि पंजाब जैसे उन्नत कृषि राज्य में भी लगभग 118 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में एक नियमित मंडी ही है। पिछड़े राज्यों में तो स्थिति बदतर है जैसे मेघालय में एक नियमित मंडी का औसत क्षेत्र 11214 वर्ग कि.मी. तक का है। वास्तव में तो किसानों को 5 कि.मी. की दूरी पर ही एक उचित कृषि मंडी मिलनी चाहिए जिसका क्षेत्र लगभग 80 कि.मी. तक ही सीमित हो। इस मानदंड को राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में प्रस्तुत किया गया था जिसकी स्थापना हरित क्रांति के तुरंत बाद की गई थी।

केंद्र के आदर्श कृषि उत्पाद विपणन समिति अधिनियम में प्रावधान है कि निजी मंडियां स्थापित की जा सकती हैं – उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच खरीद और बिक्री के सीधे सौदे; और ठेके पर खेती को नियमित करना। इसका प्रमुख उद्देश्य है कि निजी निवेशकों के लिए न केवल नई निजी मंडियों को विकसित किया जाए बल्कि अन्य प्रकार के महत्वपूर्ण और अन्य सहायक आधारभूत सुविधाओं को भी विकसित किया जाय, जिसके अंतर्गत महंगी जिंसों और कम शैल्फ लाइफ वाली जिंसों के लिए शीत भंडारण की सुविधा प्रदान की जाए, इन फसलों के कारण खाद्य मुद्रा स्फीति बढ़ रही है। फार्म – फर्म्स संपर्क बढ़ाने के लिए पुराने और नए संपर्क बढ़ाये जाने की आवश्यकता है। किंतु जैसा बारहवीं योजना के दस्तावेजों में कहा गया है कि अधिकतम राज्यों में निजी व्यापारियों द्वारा विपणन पद्धति आरंभ करने के लिए अनुमति नए कानून के अंतर्गत दी जाएगी जो कुछ प्रतिबंधों और शर्तों के अध्यधीन होगा, इनमें से अधिकतम शर्तें भावी निवेशकों को अस्वीकार्य हैं। योजना आयोग के दस्तावेज में स्पष्ट रूप से टिप्पणी की गई है कि 'वर्तमान मंडी पद्धति को इसी प्रकार रखने के लिए स्वार्थी लोगों की स्थिति बहुत मजबूत है'। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्यों में विभिन्न कृषि जिंसों पर लिया जाने वाला मंडी शुल्क बहुत ऊँचा है जैसे कि कुछ राज्यों में 15 प्रतिशत तक है जबकि व्यापार की गई जिंसों के मूल्य का यह अधिकतम 0.50 प्रतिशत ही वांछनीय है।

न ही अधिकतम किसानों को उनकी उपजों के लिए लाभकारी मूल्य मिलेगा; न ही भारतीय कृषि किसानों द्वारा उत्पादित जिंसों की मांग और अधिक उपभोक्ता मूल्य की पद्धति में कारगर परिवर्तन करने के योग्य बन पाएगी।

कृषि संपादक, बिजनैस स्टैंडर्ड